

## Chapter चौबीस

### नीचे के स्वर्गीय लोकों का वर्णन

इस अध्याय में सूर्य से नीचे १०,००० योजन (८०,००० मील) दूरी पर स्थित राहु ग्रह तथा अतल एवं अन्य निम्न लोकों का वर्णन किया गया है। राहु सूर्य तथा चन्द्रमा के नीचे स्थित है। यह इन दोनों ग्रहों (लोकों) एवं पृथ्वी के मध्य में है। जब राहु सूर्य अथवा चन्द्रमा को ढक लेता है, तो पूर्ण अथवा आंशिक ग्रहण लगते हैं, जो उसकी सीधी या वक्रगति पर निर्भर करता है।

राहु से भी १०,००,००० योजन नीचे सिद्धों, चारणों तथा विद्याधरों के लोक और इनसे भी नीचे यक्षलोक तथा राक्षसलोक स्थित हैं। इन सब ग्रहों के नीचे पृथ्वी है और इसके भी नीचे ७०,००० योजन पर निम्नतरलोक-अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल लोक हैं। इन निम्नतर ग्रहों में असुर तथा राक्षसगण अपनी पत्नियों तथा संतानों समेत वास करते हैं और अगले जन्मों की परवाह किये बिना सदैव ही इन्द्रियभोग में लिप्त रहते हैं। इन लोकों में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता। इन्हें सर्पों के फणों पर लगी मणियाँ प्रकाशित करती हैं जिससे वहाँ अंधकार नहीं रहता है। इन लोकों के वासी न तो वृद्ध होते हैं और न उन्हें रोग सताता है। वे किसी कारण से होने वाली मृत्यु से भयभीत नहीं हैं। यदि वे भयभीत हैं, तो केवल काल से जो श्रीभगवान् ही है।

अतललोक में अँगड़ाते एक असुर (दैत्य) से तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुई—जिन्हें *स्वैरिणी*

(स्वतंत्र), कामिनी (कामोन्मत्त) तथा पुंश्रुली (पुरुषों द्वारा आसानी से वशीभूत) कहते हैं। अतल से नीचे वितल ग्रह है जहाँ भगवान् शिव अपनी पत्नी गौरी के साथ निवास करते हैं। उनकी उपस्थिति से एक प्रकार का स्वर्ण उत्पन्न होता है जो हाटक कहलाता है। वितल के नीचे सुतल ग्रह में परम भाग्यशाली बलि महाराज का आवास है। भगवान् वामनदेव ने उनकी कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर बलि महाराज पर कृपा की। वे उनके साथ यज्ञस्थल पर गये और तीन पग भूमि माँगकर उसी बहाने उनकी सारी सम्पत्ति ले ली। सर्वस्व देने के लिए बलि महाराज द्वारा तैयार हो जाने पर भगवान् परम प्रसन्न हुए; फलस्वरूप वे उनके द्वारपाल बन गये। बलि महाराज का वर्णन श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध में हुआ है।

जब भगवान् किसी भक्त को भौतिक सुख प्रदान करते हैं, तो वह उनका वास्तविक वरदान नहीं होता। अपने ऐश्वर्य के गर्व में फूले हुए देवतागण ईश्वर से केवल भौतिक सुख के लिए प्रार्थना करते हैं। किन्तु प्रह्लाद महाराज जैसे भक्तगण भौतिक सुख की कामना नहीं करते। भौतिक सुख की क्या बात, वे भौतिक बन्धन से मुक्ति तक की कामना नहीं करते, यद्यपि पवित्र नाम के अशुद्ध उच्चारण से जप करने से भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

सुतललोक के नीचे तलातल है, जो मय-असुर का वास है। भगवान् शंकर के वरदान से यह असुर भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुखी है, किन्तु उसे कभी आत्मिक सुख प्राप्त नहीं हो पाता। तलातल से भी नीचे महातल है जहाँ सैकड़ों-हजारों फणों वाले अनेक सर्प हैं। महातल के नीचे रसातल और उससे भी नीचे पाताललोक है जहाँ नाग वासुकी अपने साथियों सहित वास करता है।

श्रीशुक उवाच

अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया  
स्वयमसुरापसदः सैहिकेयो ह्यतदर्हस्तस्य तात जन्म कर्माणि चोपरिष्ठाद्दक्ष्यामः. ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; अधस्तात्—नीचे; सवितुः—सूर्य गोलक; योजन—आठ मील के बराबर की दूरी; अयुते—दस हजार; स्वर्भानुः—राहु नामक ग्रह; नक्षत्र-वत्—नक्षत्र के समान; चरति—घूमता है; इति—इस प्रकार; एके—कुछ पुराणवेत्ता; यः—जो; असौ—वह; अमरत्वम्—देवताओं के सदृश जीवन; ग्रहत्वम्—किसी प्रमुख ग्रह की सी स्थिति; च—और; अलभत—प्राप्त की गई; भगवत्-अनुकम्पया—श्रीभगवान् की दया से; स्वयम्—स्वयं, साक्षात्; असुर-अपसदः—असुरों में निम्नतम; सैहिकेयः—सिंहिका का पुत्र होने से; हि—निस्सन्देह; अ-तत्-अहं—उस पद के लिए सुयोग्य; तस्य—उसका; तात—हे राजन्; जन्म—जन्म; कर्माणि—क्रियाएँ; च—भी; उपरिष्ठात्—बाद में; दक्ष्यामः—मैं कहूँगा।

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्, कुछ पुराण-वाचकों का कथन है कि सूर्य से १०,००० ( ८०,००० मील ) योजन नीचे राहु नामक ग्रह है जो नक्षत्रों की भाँति घूमता है। इस ग्रह का अधिष्ठाता देवता, जो सिंहिका का पुत्र है समस्त असुरों में घृणास्पद है और इस पद के लिए सर्वथा अयोग्य होने पर भी श्रीभगवान् की कृपा से उसे प्राप्त कर सका है। मैं उसके विषय में आगे कहूँगा।

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः  
पर्वणि तद्व्यवधानकृद्द्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

यत्—जो; अदः—वह; तरणेः—सूर्य का; मण्डलम्—गोलक; प्रतपतः—जो सदैव उष्मा प्रदान करता है; तत्—वह; विस्तरतः—विस्तार में; योजन—आठ मील की दूरी; अयुतम्—दस हजार; आचक्षते—उनका अनुमान है; द्वादश-सहस्रम्—बीस हजार योजन; सोमस्य—चन्द्रमा का; त्रयोदश—तीस; सहस्रम्—हजार; राहोः—राहु नामक ग्रह का; यः—जो; पर्वणि—अवसर पर; तत्-व्यवधान-कृत्—जिसने अमृत वितरण के समय सूर्य तथा चन्द्रमा के लिए अवरोध उत्पन्न किया; वैर-अनुबन्धः—वैर भाव; सूर्या—सूर्य; चन्द्रमसौ—तथा चन्द्रमा; अभिधावति—पूर्णिमा तथा अमावस्या के समय उनका पीछा करता है।

उष्मा के स्रोत सूर्य गोलक का विस्तार १०,००० योजन ( ८०,००० मील ) है। चन्द्रमा का २०,००० योजन ( १६०,००० मील ) और राहु का ३०,००० योजन ( २४०,००० मील ) तक फैला हुआ है। अमृत वितरण के समय राहु ने सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्य आसीन होकर उनके बीच विद्वेष उत्पन्न करना चाहा। राहु, सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों के प्रति शत्रुभाव रखता है। इसलिए वह सदा अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन उनको ढकने का प्रयत्न करता रहता है।

तात्पर्य : जैसाकि यहाँ बताया गया है सूर्य १०,००० योजन तक और चन्द्रमा इससे दूना २०,००० योजन तक विस्तीर्ण है। यहाँ द्वादश शब्द का अर्थ दस का दो गुना अर्थात् बीस मानना चाहिए। विजयध्वज के मत से राहु को चन्द्रमा का दो गुना अर्थात् ४०,००० योजन तक विस्तीर्ण होना चाहिए। किन्तु भागवत के इस विरोधाभास से सहमत होने के लिए वे राहु के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत करते हैं—*राहुसोमरवीणां तु मण्डला द्विगुणोक्तिताम्*—जिसका अर्थ है कि राहु चन्द्रमा से दुगुना बड़ा है और चन्द्रमा सूर्य से दुगुना है। यह निष्कर्ष टीकाकार विजयध्वज का है।

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः  
परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥  
३ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह स्थिति; निशम्य—सुनकर; उभयत्र—सूर्य तथा चन्द्र दोनों के चारों ओर; अपि—निस्सन्देह; भगवता—श्रीभगवान् द्वारा; रक्षणाय—उनकी रक्षा हेतु; प्रयुक्तम्—संलग्न; सुदर्शनम्—श्रीकृष्ण का चक्र; नाम—नामक; भागवतम्—अत्यन्त विश्वासपात्र भक्त; दयितम्—अत्यन्त प्रिय; अस्त्रम्—आयुध; तत्—वह; तेजसा—अपने तेज से; दुर्विषहम्—असह्य गर्मी; मुहुः—बारम्बार; परिवर्तमानम्—सूर्य तथा चन्द्र की परिक्रमा करता हुआ; अभ्यवस्थितः—स्थित; मुहूर्तम्—एक मुहूर्त ( ४८मिनट ) के लिए; उद्विजमानः—जिसका मन चिन्ताओं से पूर्ण है; चकित—चकित, डरा हुआ; हृदयः—हृदय; आरात्—सुदूर स्थान तक; एव—ही; निवर्तते—भागता है; तत्—वह स्थिति; उपरागम्—ग्रहण; इति—इस प्रकार; वदन्ति—कहते हैं; लोकाः—लोग ।

सूर्य तथा चन्द्र देवताओं से राहु के आक्रमण को सुन कर उनकी रक्षा हेतु भगवान् विष्णु अपना सुदर्शन चक्र चलाते हैं। यह चक्र भगवान् का अत्यन्त प्रिय भक्त और प्रिय पात्र है। अवैष्णवों के वध हेतु इसका प्रचण्ड तेज राहु के लिए असह्य है, अतः वह डर कर भाग जाता है। जब राहु चन्द्र या सूर्य को सताता है, तो ग्रहण लगता है।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु अपने भक्तों के, जिन्हें देवता भी कहा जाता है, सदैव ही रक्षक हैं। प्रधान देवता विष्णु के अत्यन्त आज्ञाकारी होते हैं, यद्यपि उन्हें भी भौतिक इन्द्रिय-भोग चाहिए और इसीलिए वे देवता या ईश्वरतुल्य माने जाते हैं। राहु सूर्य तथा चन्द्र पर आक्रमण करने का प्रयास करता है, किन्तु वे भगवान् विष्णु द्वारा रक्षित हैं। भगवान् विष्णु के चक्र से भयभीत रहने के कारण राहु सूर्य या चन्द्र के समक्ष एक मुहूर्त ( ४८ मिनट ) से अधिक समय तक नहीं ठहर पाता। जब राहु सूर्य या चन्द्रमा के प्रकाश को रोक लेता है, तो यह घटना ग्रहण कहलाती है। पृथ्वी के विज्ञानियों का चन्द्रमा तक जाने का प्रयास राहु के आक्रमण के समान आसुरी है। निस्सन्देह उनके प्रयत्न विफल होंगे, क्योंकि कोई भी सूर्य या चन्द्रमा में सरलता से प्रवेश नहीं कर सकता। राहु के आक्रमण के समान ही ऐसे प्रयास निष्फल सिद्ध होंगे।

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ततः—राहु ग्रह से; अधस्तात्—नीचे; सिद्ध-चारण—सिद्धलोक तथा चारण लोक का; विद्याधराणाम्—तथा विद्याधरों के ग्रहों के; सदनानि—आवास; तावत् मात्र—केवल उतनी ही दूरी ८०,००० मील; एव—निस्सन्देह ।

राहु से १०,००० योजन ( ८०,००० मील ) नीचे सिद्धलोक, चारणलोक तथा

विद्याधरलोक हैं।

तात्पर्य : कहा जाता है कि सिद्धलोक के वासियों को योगियों की सिद्धियाँ प्राप्त हैं, जिससे वे वायुयान अथवा इसी प्रकार के यंत्रों का प्रयोग किये बिना ही एक लोक से दूसरे लोक की यात्रा कर सकते हैं।

ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ततः अधस्तात्—सिद्ध, चारण तथा विद्याधर लोकों से नीचे; यक्ष-रक्षः—पिशाच-प्रेत-भूत-गणानाम्—यक्ष, राक्षस, पिशाच भूत इत्यादि के; विहार-अजिरम्—भोग-विलास का स्थान; अन्तरिक्षम्—अन्तरिक्ष या आकाश में; यावत्—जहाँ तक; वायुः—वायु; प्रवाति—बहती है; यावत्—जहाँ तक; मेघाः—मेघ; उपलभ्यन्ते—देखे जाते हैं।

अन्तरिक्ष में विद्याधरलोक, चारणलोक तथा सिद्धलोक के नीचे यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, भूतों इत्यादि के भोगविलास के स्थान हैं। जहाँ तक वायु प्रवाहित होती है और आकाश में बादल तैरते हैं, वहाँ तक अन्तरिक्ष का विस्तार है। इसके ऊपर वायु नहीं है।

ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतन्निप्रवरा उत्पतन्तीति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ततः अधस्तात्—इससे भी नीचे; शत-योजन—एक सौ योजन; अन्तरे—दूरी पर; इयम्—यह; पृथिवी—पृथ्वी; यावत्—जितना ऊँचा; हंस—हंस पक्षी; भास—गिद्ध; श्येन—बाज; सुपर्णा—आदयः—तथा अन्य पक्षीगण; पतन्नि-प्रवराः—पक्षियों में श्रेष्ठ; उत्पतन्ति—उड़ सकते हैं; इति—इस प्रकार।

यक्षों तथा राक्षसों के आवासों के नीचे १०० ( ८०० मील ) योजन की दूरी पर पृथ्वी ग्रह है। इसकी ऊपरी सीमा उतनी ऊँचाई तक है जहाँ तक हंस, गिद्ध, बाज तथा अन्य बड़े पक्षी उड़ सकते हैं।

उपवर्णितं भूमेर्यथासन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्त भूविवरा एकैकशो योजनान्युतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्रिप्ता अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

उपवर्णितम्—पूर्वकथित; भूमेः—पृथ्वी का; यथा-सन्निवेश-अवस्थानम्—विभिन्न स्थानों की योजना के अनुसार; अवनेः—पृथ्वी के; अपि—निश्चय ही; अधस्तात्—नीचे; सप्त—सात; भू-विवराः—अन्य लोक; एक-एकशः—क्रम से, ब्रह्माण्ड की ऊपरी सीमा तक; योजन-अयुत-अन्तरेण—दस हजार योजन के अन्तर पर; आयाम-विस्तारेण—चौड़ाई तथा लम्बाई में;

उपक्रिप्ताः—स्थित; अतलम्—अतल; वितलम्—वितल; सुतलम्—सुतल; तलातलम्—तलातल; महातलम्—महातल; रसातलम्—रसातल; पातालम्—पाताल; इति—इस प्रकार।

हे राजन्, इस पृथ्वी के नीचे सात अन्य लोक हैं, जो अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल कहलाते हैं। मैं पृथ्वीलोक की स्थिति पहले ही बता चुका हूँ। इन सात निम्नलोकों की चौड़ाई तथा लम्बाई पृथ्वी के बराबर ही परिगणित की गई है।

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दभूतिविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

एतेषु—इसमें से; हि—निश्चय ही; बिल-स्वर्गेषु—अधः-स्वर्ग लोकों में; स्वर्गात्—स्वर्गलोकों की अपेक्षा; अपि—भी; अधिक—बढ़कर; काम-भोग—इन्द्रियभोग का सुख; ऐश्वर्य-आनन्द—ऐश्वर्यजन्य आनन्द; भूति—प्रभाव; विभूतिभिः—वस्तुओं तथा सम्पत्ति से; सु-समृद्ध—उन्नत; भवन—घर; उद्यान—उपवन, बगीचे; आक्रीड-विहारेषु—इन्द्रियतृप्ति के लिए नाना प्रकार के क्रीड़ा स्थलों में; दैत्य—दैत्य, असुर; दानव—भूत-प्रेत; काद्रवेयाः—सर्प; नित्य—शाश्वत; प्रमुदित—अत्यधिक प्रसन्न; अनुरक्त—लगाव के कारण; कलत्र—पत्नी को; अपत्य—बच्चे; बन्धु—सगे सम्बन्धी; सुहृत्—मित्र; अनुचराः—अनुचर; गृह-पतयः—गृहस्वामी, घर का मुखिया; ईश्वरात्—देवताओं के तुल्य अधिक सक्षम जनों की अपेक्षा; अपि—भी; अप्रतिहत-कामाः—जिनकी कामेच्छा रोके नहीं रुकती; माया—मायामय; विनोदाः—जो सुख का अनुभव करते हैं; निवसन्ति—निवास करते हैं।

बिल स्वर्ग ( नीचे के स्वर्ग ) कहलाने वाले इन सातों लोकों में अत्यन्त सुन्दर घर, उद्यान तथा क्रीड़ास्थलियाँ हैं, जो स्वर्गलोक से भी अधिक ऐश्वर्यशाली हैं, क्योंकि असुरों के विषय-भोग, सम्पत्ति तथा प्रभाव के मानक बहुत ऊँचे हैं। इन लोकों के वासी दैत्य, दानव तथा नाग कहलाते हैं और उनमें से बहुत से गृहस्थों की भाँति रहते हैं। उनकी पत्नियाँ, सन्तानें, मित्र तथा उनका समाज मायामय भौतिक सुख में पूरी तरह मग्न रहता है। भले ही देवताओं के ऐन्द्रिय-सुख में कभी-कभी बाधा आए, किन्तु इन लोकों के वासी अबाध जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार उन्हें मायामय सुख में अत्यधिक लिप्त माना जाता है।

तात्पर्य : प्रह्लाद महाराज के कथना नुसार भौतिक सुख *मायासुख* कहलाता है। वैष्णव सदैव ऐसे झूठे सुख से जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए चिन्तित रहता है। प्रह्लाद महाराज कहते हैं—*मायासुखाय भरमुद्धततो विमूढान्*—ये मूर्ख (विमूढ़) क्षणिक भौतिक सुख में लिप्त रहते हैं। चाहे स्वर्गलोक हो या अधोलोक अथवा मर्त्यलोक, लोग सर्वत्र क्षणिक भौतिक सुख में लिप्त रहते हैं और यह भूल जाते हैं कि यथासमय उन्हें भौतिक नियमों के अनुसार अपना शरीर बदलना होगा और जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था

तथा रोग के आवागमन में पड़ना होगा। अगले जन्म की परवाह किये बिना नितान्त भौतिकतावादी अपने लघु जीवन-काल में आनन्द-भोग करने में मस्त रहना चाहते हैं। ऐसे विमूढ़ भौतिकतावादियों को आध्यात्मिक आनन्द का वास्तविक सुख प्रदान करने के लिए वैष्णव सदैव उत्सुक रहता है।

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो

नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशु  
कसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलङ्क ताश्चकासति ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

येषु—उन अधोलोकों में; महा-राज—हे राजन्; मयेन—मय दानव के द्वारा; माया-विना—वास्तुकला में दक्ष; विनिर्मिताः—निर्मित किया हुआ; पुरः—पुरियाँ; नाना-मणि-प्रवर—बहुमूल्य मणियों का; प्रवेक—श्रेष्ठतम; विरचित—निर्मित; विचित्र—आश्चर्यजनक; भवन—घर; प्राकार—भित्तियाँ; गोपुर—द्वार; सभा—सभागार; चैत्य—मन्दिर; चत्वर—पाठशालाएँ; आयतन-आदिभिः—होटलों या मनोरंजन-शालाओं आदि से युक्त; नाग—सर्प के सदृश शरीर वाले जीवों का; असुर—असुरों या अनीश्वरवादी व्यक्तियों का; मिथुन—युगों द्वारा; पारावत—कबूतर; शुक—तोता; सारिका—मैना; आकीर्ण—समूहित; कृत्रिम—बनावटी; भूमिभिः—भूमि से; विवर-ईश्वर—लोकों के अधिपतियों के; गृह-उत्तमैः—उत्तम घरों से; समलङ्क ताः—अलंकृत; चकासति—चमचमाते रहते हैं।

हे राजन्, कृत्रिम स्वर्ग में, जिन्हें बिल-स्वर्ग कहते हैं, मय नामक एक महादानव है जो अत्यन्त कुशल वास्तुशिल्पी है। उसने अनेक अलंकृत पुरियों का निर्माण किया है जहाँ अनेक विचित्र भवन, प्राचीर, द्वार, सभाभवन, मन्दिर, आँगन तथा मन्दिर-प्राचार एवं विदेशियों के रहने के होटल तथा आवास हैं। इन ग्रहों के अधिपतियों के भवनों को अत्यन्त मूल्यवान रत्नों से निर्मित किया गया है। ये भवन नागों तथा असुरों के अतिरिक्त अनेक कबूतरों, तोतों तथा अन्य पक्षियों से परिपूर्ण हैं। कुल मिलाकर ये कृत्रिम स्वर्गिक पुरियाँ अत्यन्त आकर्षक ढंग से अलंकृत की गई हैं।

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां  
लताङ्गालिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां  
झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु  
कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

उद्यानानि—बाग तथा पार्क; च—भी; अतितराम्—अत्यधिक; मनः—मन को; इन्द्रिय—तथा इन्द्रियों को; आनन्दिभिः—आनन्द प्रदान करने वाले; कुसुम—फूलों से; फल—फलों के; स्तबक—गुच्छे; सुभग—अत्यन्त सुन्दर; किसलय—नई टहनियाँ; अवनत—नीचे झुकी; रुचिर—आकर्षक; विटप—शाखाओं वाले; विटपिनाम्—वृक्षों के; लता-अङ्ग-आलिङ्गितानाम्—लताओं के अंगों द्वारा आलिङ्गित; श्रीभिः—सुन्दरता से; स-मिथुन—जोड़ों में; विविध—अनेक प्रकार के; विहङ्गम—पक्षियों द्वारा; जल-आशयानाम्—जलागारों के; अमल-जल-पूर्णानाम्—निर्मल जल से पूर्ण; झष-कुल-उल्लङ्घन—

विविध प्रकार की मछलियों के कूदने से; क्षुभित—विक्षुब्ध; नीर—जल में; नीरज—कमलपुष्पों के; कुमुद—कुमुदिनी; कुवलय—कुवलय नामक पुष्प; कह्लार—कह्लार नामक पुष्प; नील-उत्पल—नीले कमल; लोहित—लाल; शत-पत्र-आदि—सौ पंखुड़ियों वाले कमलपुष्प इत्यादि; वनेषु—वनों में; कृत-निकेतनानाम्—उन पक्षियों का जिन्होंने अपने घोंसले बना लिए हैं; एक-विहार-आकुल—बेरोक सुख से पूर्ण; मधुर—अत्यधिक मीठा; विविध—नाना प्रकार के; स्वन-आदिभिः—कम्पनों से; इन्द्रिय-उत्सवैः—इन्द्रिय सुख मनाने वाले; अमर-लोक-श्रियम्—देवताओं के लोकों की सुन्दरता; अतिशयितानि—मात करने वाले।

कृत्रिम स्वर्गों के बाग-बगीचे स्वर्गलोक के उद्यानों की शोभा को मात करने वाले हैं। उन उद्यानों के वृक्ष लताओं से लिपटे जाकर फलों तथा फूलों से लदी शाखाओं के भार से झुके रहते हैं, जिसके कारण वे अतीव सुन्दर लगते हैं। यह सुन्दरता किसी को भी आकृष्ट करनेवाली और मन को भोगेच्छा से प्रफुल्लित कर देने वाली है। वहाँ अनेक जलाशय एवं झीलें हैं जिनका जल निर्मल, पारदर्शी है तथा मछलियों के कूदने से उद्वेलित होता रहता है और कुमुदिनी, कुवलय, कह्लार तथा नील एवं लाल कमल के पुष्पों से सुसज्जित रहता है। झीलों में चक्रवाक के जोड़े तथा अन्य अनेक जलपक्षी विहार करते हैं और प्रसन्न होकर कलरव करते हैं जिसे सुनकर मन और इन्द्रियों को अत्यन्त आह्लाद होता है।

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; ह वाव—निश्चय ही; न—नहीं; भयम्—भय, डर; अहः-रात्र-आदिभिः—दिन और रात के कारण; काल-विभागैः—काल के विभाग; उपलक्ष्यते—अनुभव किया जाता है।

चूँकि उन अधःलोकों में सूर्य का प्रकाश नहीं जाता, अतः काल दिन तथा रात में विभाजित नहीं है, जिसके फलस्वरूप काल से उत्पन्न भय नहीं रहता।

यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; हि—निस्सन्देह; महा-अहि—बड़े-बड़े सर्पों के; प्रवर—सर्वश्रेष्ठ; शिरः-मणयः—फनों पर स्थित मणियाँ; सर्वम्—सभी; तमः—अंधकार; प्रबाधन्ते—दूर भगाती हैं।

वहाँ अनेक बड़े-बड़े सर्प वास करते हैं जिनके फनों की मणियों के प्रकाश से अंधकार दूर भाग जाता है।

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वा—या; एतेषु—इन लोकों में; वसताम्—बसने वालों का; दिव्य—विस्मयकारी; औषधि—जड़ी बूटियों का; रस—रस; रसायन—तथा अमृत; अन्न—खाने से; पान—पीने से; स्नान-आदिभिः—स्नान आदि करने से; आधयः—मानसिक क्लेश; व्याधयः—रोग, व्याधियाँ; वली—झुर्रियाँ; पलित—पके केश; जरा—वृद्धावस्था; आदयः—आदि; च—तथा; देह-वैवर्ण्य—शारीरिक कान्ति का म्लान पड़ना; दौर्गन्ध्य—दुर्गन्ध; स्वेद—पसीना; क्लम—थकान; रलानिः—शक्ति-क्षय; इति—इस प्रकार; वयः अवस्थाः—आयु के बढ़ने के कारण उत्पन्न शोचनीय दशाएँ; च—भी; भवन्ति—हैं।

चूँकि इन लोकों के निवासी जड़ी-बूटियों से बने रस तथा रसायन का पान करते हैं और उनमें स्नान करते हैं, अतः वे सभी प्रकार की चिन्ताओं और व्याधियों से मुक्त रहते हैं। न तो उनके केश सफेद होते हैं, न झुर्रियाँ पड़ती हैं, न वे अशक्य होते हैं। उनकी शारीरिक कान्ति कभी मलिन नहीं पड़ती, उनके पसीने से दुर्गन्ध नहीं आती और न तो उन्हें थकान, न ही शक्ति का अथवा वृद्धावस्थाजन्य उत्साह का अभाव सताता है।

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

न हि—नहीं; तेषाम्—उनका; कल्याणानाम्—जो स्वभाव से शुभ होते हैं; प्रभवति—प्रभाव डालने में सक्षम; कुतश्चन—कहीं से भी; मृत्युः—मृत्यु; विना—के सिवा; भगवत्-तेजसः—श्रीभगवान् की शक्ति का; चक्र-अपदेशात्—सुदर्शन चक्र से।

वे अत्यन्त कुशलपूर्वक रहते हैं और काल रूप श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र के अतिरिक्त अन्य किसी साधन द्वारा मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।

तात्पर्य : भौतिक जगत का यही दोष है। अधोलोकों में प्रत्येक वस्तु सुचारु रीति से व्यवस्थित है। वहाँ सुन्दर आवास हैं, मोहक वायुमण्डल है और वहाँ शारीरिक क्लेश या मानसिक व्याधियाँ नहीं हैं। तो भी वहाँ जो रहते हैं उन्हें अपने कर्मों के अनुसार दूसरा जन्म ग्रहण करना होता है। मन्द बुद्धि वाले पुरुष सुखोन्मुखी भौतिकतावादी सभ्यता के इस दोष को नहीं समझ सकते। कोई कितना ही क्यों न अपनी इन्द्रियों को भाने वाली परिस्थितियाँ उत्पन्न कर ले, किन्तु, अन्ततः उसे मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। आसुरी सभ्यता के लोग अपनी परिस्थितियों को अत्यन्त सुखद बनाने का प्रयास करते हैं, किन्तु वे मृत्यु को नहीं रोक पाते। तथाकथित सुदर्शन चक्र के प्रभाव से उनका यह तथाकथित भौतिक सुख स्थायी नहीं रह सकता।

यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जहाँ; प्रविष्टे—प्रवेश करने पर; असुर-वधूनाम्—उन असुर वधुओं का; प्रायः—प्रायः; पुंसवनानि—गर्भ; भयात्—भयवश; एव—ही; स्रवन्ति—बाहर सरकते हैं; पतन्ति—गिर पड़ते हैं; च—तथा।

जब सुदर्शन चक्र उन प्रदेशों में पहुँचता है, तो उसके तेज के भय से असुरों की गर्भिणी स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है।

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्रुल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्पुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कथ्यते मदान्ध इव ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

अथ—अब; अतले—अतल नामक लोक पर; मय-पुत्रः असुरः—मय का असुर पुत्र; बलः—बल; निवसति—वास करता है; येन—जिसके द्वारा; ह वा—निस्सन्देह; इह—इसमें; सृष्टाः—रचना की; षट्-णवतिः—छियानबे; मायाः—माया के प्रकार; काश्चन—कोई; अद्य अपि—आज भी; माया-विनः—मायावी लोग ( यथा सोना बनाने वाले ); धारयन्ति—उपयोग करते हैं; यस्य—जिसका; च—भी; जृम्भमाणस्य—उवासी लेते हुए; मुखतः—मुख मार्ग से; त्रयः—तीन; स्त्री-गणाः—स्त्रियों के प्रकार; उदपद्यन्त—उत्पन्न हुए; स्वैरिण्यः—स्वैरिणी ( जो अपनी ही जाति में ब्याह करती है ); कामिन्यः—कामिनी ( जो कामवश किसी भी जाति के पुरुष से ब्याह कर लेती है ); पुंश्रुल्यः—पुंश्रुली ( जो एक पति को छोड़कर दूसरा पति बनाना चाहती है ); इति—इस प्रकार; याः—जो; वै—निश्चय ही; बिल-अयनम्—अधोलोक, बिल-स्वर्ग में; प्रविष्टम्—प्रवेश करके; पुरुषम्—नर; रसेन—रस द्वारा; हाटक-आख्येन—हाटक नामक मादक जड़ी से बना हुआ; साधयित्वा—विषयभोग के लिए सक्षम बनाकर; स्व-विलास—अपने इन्द्रियभोग के लिए; अवलोकन—चितवन से; अनुराग—कामी; स्मित—मन्द हास से; संलाप—बातचीत से; उपगूहन-आदिभिः—आलिंगन आदि से; स्वैरम्—अपनी इच्छानुसार; किल—निस्सन्देह; रमयन्ति—रमण करते हैं; यस्मिन्—जो; उपयुक्ते—उपभोग करने पर; पुरुषः—पुरुष; ईश्वरः—अहम्—मैं सर्वशक्तिमान पुरुष हूँ; सिद्धः—अहम्—मैं सिद्ध पुरुष हूँ; इति—इस प्रकार; अयुत—दस हजार; महा-गज—बड़े-बड़े हाथियों की; बलम्—शक्ति; आत्मानम्—अपने आप; अभिमन्यमानः—गर्व से पूर्ण होकर; कथ्यते—कहते हैं; मदान्धः—मिथ्या अहंकार से अन्धा; इव—सदृश।

हे राजन्, अब मैं तुमसे अतललोक से प्रारम्भ करके एक एक करके समस्त अधोलोकों का वर्णन करूँगा। अतललोक में मय-दानव का पुत्र बल नामक असुर है, जिसने छियानबे प्रकार की माया रच रखी है। कुछ तथाकथित योगी तथा स्वामी आज भी लोगों को ठगने के लिए इस माया का प्रयोग करते हैं। बल असुर ने उवासी लेने से स्वैरिणी, कामिनी तथा पुंश्रुली के नाम से तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं। स्वैरिणियाँ अपने ही समूह के पुरुष से ब्याह करना पसन्द करती हैं, कामिनियाँ किसी भी वर्ग के पुरुष से ब्याह कर लेती हैं और पुंश्रुलियाँ अपना पति बदलती रहती हैं। यदि कोई पुरुष अतललोक में प्रवेश करता है, तो ये स्त्रियाँ तुरन्त ही उसे बन्दी बना कर हाटक नामक जड़ी से बनाये गये मादक पेय को पीने के लिए बाध्य कर देती हैं। इस पेय से मनुष्य में प्रचुर काम-शक्ति जाग्रत होती है, जिसका उपयोग वे स्त्रियाँ अपने सम्भोग हेतु करती हैं। स्त्रियाँ उसे अपनी मोहक चितवन, प्रेमालाप, मन्द मुस्कान तथा आलिंगन इत्यादि के

द्वारा मोह लेती हैं। इस प्रकार वे उन्हें अपने साथ संभोग के लिए फुसलाकर जी भर कर कामतृप्ति करती हैं। कामशक्ति बढ़ने के कारण मनुष्य अपने को दस हजार हाथियों से भी अधिक बलवान और सक्षम न मानने लगता है। दरअसल मदहोशी के कारण मोहग्रस्त होकर वह सर पर खड़ी मृत्यु की अनदेखी करके अपने आपको ईश्वर समझने लगता है।

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान्हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति तन्निष्ठयूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति. ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—अतललोक के; अधस्तात्—नीचे; वितले—वितललोक में; हरः—भगवान् शिव; भगवान्—सर्वशक्तिमान; हाटकेश्वरः—स्वर्ण का स्वामी; स्व-पार्षद—अपने पार्षदों से; भूत-गण—जो भूत जैसे प्राणी हैं; आवृतः—घिर कर; प्रजापति-सर्ग—भगवान् ब्रह्मा की सृष्टि; उपबृंहणाय—जनसंख्या बढ़ाने के उद्देश्य से; भवः—भगवान् शिव; भवान्या सह—अपनी पत्नी भवानी सहित; मिथुनी-भूतः—कामक्रीड़ा में रत; आस्ते—रहते हैं; यतः—उस लोक ( वितल ) से; प्रवृत्ता—निकल कर; सरित्-प्रवरा—बड़ी नदी; हाटकी—हाटकी; नाम—नाम की; भवयोः वीर्येण—भगवान् शिव तथा भवानी के वीर्य एवं रज से; यत्र—जहाँ; चित्र-भानुः—अग्निदेवता; मातरिश्वना—वायु द्वारा; समिध्यमानः—तेजी से प्रज्वलित किये जाने पर; ओजसा—अत्यधिक शक्ति के साथ; पिबति—पीता है; तत्—वह; निष्ठयूतम्—फूटकार करते हुए थूकना; हाटक-आख्यम्—हाटक नाम का; सुवर्णम्—सोना; भूषणेन—अनेक प्रकार के आभूषणों द्वारा; असुर-इन्द्र—महान् असुरों के; अवरोधेषु—घरों में; पुरुषाः—नर; सह—के साथ; पुरुषीभिः—अपनी पत्नियों तथा स्त्रियों के; धारयन्ति—धारण करते हैं।

अतललोक के नीचे अगला ग्रह वितल है जहाँ स्वर्ण खानों के स्वामी भगवान् शिव अपने गणों, भूतों तथा ऐसे ही अन्य जीवों के साथ रहते हैं। पिता-रूप शिव माता-रूप भवानी के साथ विहार करते हैं और इनके वीर्य-रज के मिश्रण से हाटकी नामक नदी निकलती है। जब वायु द्वारा अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, तो वह नदी को पी जाती है और बाहर थूक देने पर हाटक नामक स्वर्ण उत्पन्न होता है। इस लोक के वासी असुर अपनी पत्नियों सहित उस स्वर्ण के बने आभूषणों से अपने को अलंकृत करते हैं और इस प्रकार से वे अत्यन्त सुखपूर्वक रहते हैं।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि भव तथा भवानी अर्थात् शिवजी तथा उनकी पत्नी के सम्भोग करने पर जो वीर्य निकलता है, उसमें जो रसायन होता है उसे अग्नि में तपाने पर सोना उत्पन्न किया जा सकता है। कहा जाता है कि मध्य युग के कीमयागर निम्न धातु से सोना बनाना जानते थे और श्रील सनातन गोस्वामी का भी कथन है काँसे को पारे से अभिकृत करने पर सोना बन सकता है। श्रील सनातन गोस्वामी का यह उल्लेख निम्न वर्ग के पुरुषों को ब्राह्मण बनाने के प्रसंग में हुआ है। उनका

कथन है—

यथा कांचनतां याति कांस्यं रसं विधानतः ।

तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वम् जायते नृणाम् ॥

“जिस प्रकार कांसे को पारे से अभिकृत करके उसे सोने में बदला जा सकता है उसी प्रकार निम्न कुल में उत्पन्न मनुष्य को वैष्णव कार्यों में लगाकर ब्राह्मण बनाया जा सकता है।” अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ द्वारा म्लेच्छों तथा यवनों को उचित ढंग से दीक्षा दे कर तथा उन्हें मांसाहार, मादक द्रव्य, व्यभिचार तथा घृत-क्रीड़ा से विरत करके ब्राह्मणों में परिणत करने का प्रयास किया जा रहा है। जो कोई इन चार पापकर्मों का परित्याग करके हरे कृष्ण महामंत्र का जप करता है, वह प्रामाणिक दीक्षा द्वारा शुद्ध ब्राह्मण बन सकता है। ऐसा श्रील सनातन गोस्वामी का प्रस्ताव है।

इसके अतिरिक्त, यदि कोई इस श्लोक से संकेत पाकर यह सीख ले कि कांसे के साथ पारे को कैसे मिलाने तथा गलाने हैं, तो वह सस्ते में सोना तैयार कर सकता है। यद्यपि मध्ययुग के कीमियागरों ने स्वर्ण बनाने का प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे, क्योंकि शायद उन्होंने सही निर्देशों का पालन नहीं किया।

ततोऽधस्तात्सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं  
चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित  
इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस  
आस्तेऽधुनापि ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः अधस्तात्—वितल लोक के नीचे; सुतले—सुतल लोक में; उदार-श्रवाः—अत्यन्त प्रसिद्ध; पुण्य-श्लोकः—अत्यन्त पवित्र एवं चिन्मय भावना में अग्रसर; विरोचन-आत्मजः—विरोचन का पुत्र; बलिः—बलि महाराज; भगवता—श्रीभगवान् के द्वारा; महा-इन्द्रस्य—स्वर्ग के राजा इन्द्र का; प्रियम्—कुशलता; चिकीर्षमाणेन—करने की कामना रखने वाला; आदितेः—अदिति से; लब्ध-कायः—अपना शरीर प्राप्त करके; भूत्वा—प्रकट होकर; वटु—ब्रह्मचारी; वामन-रूपेण—वामन के रूप में; पराक्षिप्त—एँठ लिया; लोक-त्रयः—तीनों लोक; भगवत्-अनुकम्पया—श्रीभगवान् की कृपा से; एव—ही; पुनः—फिर; प्रवेशितः—प्रवेश करने के लिए बाध्य किया; इन्द्र-आदिषु—स्वर्ग के राजा जैसे देवताओं के मध्य में; अविद्यमानया—अनुपस्थित रहकर; सुसमृद्धया—ऐसे ऐश्वर्य से अत्यन्त धनी बनकर; श्रिया—सौभाग्य से; अभिजुष्टः—आशीष प्राप्त करके; स्व-धर्मेण—भक्ति करके; आराधयन्—आराधना करके; तम्—उसे; एव—निश्चय ही; भगवन्तम्—श्रीभगवान् को; आराधनीयम्—अत्यन्त आराध्य; अपगत-साध्वसः—भयरहित; आस्ते—रहता है; अधुना अपि—आज भी।

वितल के नीचे सुतल नामक एक अन्य लोक है जहाँ महाराज विरोचन के पुत्र बलि महाराज रहते हैं, जो अत्यन्त पवित्र राजा के रूप में विख्यात हैं और वहाँ आज भी निवास करते हैं। स्वर्ग

के राजा इन्द्र के कल्याण हेतु भगवान् विष्णु अदिति के पुत्र वामन ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट हुए और केवल तीन पग पृथ्वी माँग कर महाराज बलि को छल कर तीनों लोक प्राप्त कर लिए। सर्वस्व दान ले लेने पर बलि से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें उनका राज्य लौटा दिया और इन्द्र से भी ऐश्वर्यवान् बना दिया। आज भी सुतललोक में श्रीभगवान् की आराधना करते हुए बलि महाराज भक्ति करते हैं।

तात्पर्य : पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को उत्तमश्लोक कहा गया है, जिसका अर्थ है, “जिसकी आराधना श्रेष्ठतम चुने हुए संस्कृत श्लोकों से की जाती है” तथा बलि महाराज सरीखे उनके भक्तों की भी पुण्यश्लोक अर्थात् करुणा बढ़ाने वाले श्लोकों के रूप में आराधना की जाती है। बलि महाराज ने अपना सर्वस्व, अपनी सम्पत्ति, अपना राज्य यहाँ तक कि अपना शरीर भी भगवान् को अर्पित कर दिया ( सर्वात्म-निवेदने बलिः )। भगवान् ब्राह्मण भिक्षुक के रूप में बलि महाराज के सम्मुख प्रकट हुए और बलि महाराज ने जो कुछ भी उनके पास था, वह सब कुछ दे डाला। फिर भी, वे दरिद्र नहीं हुए, वे श्रीभगवान् को अपना सर्वस्व अर्पित करके सफल भक्त बन गये और भगवान् के आशीष से उन्हें सब कुछ वापस मिल गया। इसी प्रकार जो लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन के कार्यों को बढ़ावा देने के लिए और इसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दान देते हैं, वे कभी घाटे में नहीं रहते, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के आशीर्वाद से सब कुछ वापस मिल जाएगा। दूसरी ओर जो अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के लिए धन संग्रह करते हैं उन्हें चाहिए कि उसमें से भगवान् की दिव्य सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में एक पाई भी खर्च न करें।

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा सम्प्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्विलनिलयैश्वर्यम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

नो—न; एव—निश्चित ही; एतत्—यह; साक्षात्कारः—प्रत्यक्ष फल; भूमि-दानस्य—भूमि दान का; यत्—जो; तत्—वह; भगवति—श्रीभगवान् के प्रति; अशेष-जीव-निकायानाम्—असंख्य जीवात्माओं का; जीव-भूत-आत्म-भूते—जो जीवन एवं परम-आत्मा है; परम-आत्मनि—परम नियन्ता; वासुदेवे—भगवान् वासुदेव ( श्रीकृष्ण ) में; तीर्थ-तमे—तीर्थों में श्रेष्ठ; पात्रे—सबसे योग्य ग्राहक; उपपन्ने—पहुँचने के बाद; परया—परमश्रेष्ठ के द्वारा; श्रद्धया—श्रद्धा द्वारा; परम-आदर—अतीव सम्मान सहित; समाहित-मनसा—अत्यन्त मनोयोग से; सम्प्रतिपादितस्य—प्रदान किया गया; साक्षात्—प्रत्यक्षतः; अपवर्ग-द्वारस्य—मुक्ति का द्वार; यत्—जो; बिल-निलय—बिल स्वर्ग का, कृत्रिम स्वर्गलोकों का; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य।

हे राजन्, बलि महाराज ने श्रीभगवान् वामनदेव को अपना सर्वस्व दान कर दिया, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अपने दान के कारण उन्हें बिल-स्वर्ग में इतना भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। समस्त जीवात्माओं के जीवनमूल श्रीभगवान् प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस्थल में मित्र परमात्मा के रूप में निवास करते हैं और उन्हीं के आदेश से इस भौतिक संसार में आनंद उठाते हैं या कष्ट भोगते हैं। भगवान् के दिव्य गुणों पर रीझ कर बलि महाराज ने अपना सर्वस्व उनके चरणकमलों में अर्पित कर दिया। किन्तु उनका लक्ष्य भौतिक लाभ प्राप्त करना नहीं था, वे तो शुद्ध भक्त बनना चाहते थे। शुद्ध भक्त के लिए मुक्ति के द्वार स्वतः खुले जाते हैं। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि केवल अपने दान के कारण बलि महाराज को इतना ऐश्वर्य प्राप्त हो सका। जब कोई प्रेमवश शुद्ध भक्त बन जाता है, तो उसे भी भगवदिच्छा से अच्छा भौतिक स्थान प्राप्त होता है। किन्तु कभी गलती से यह नहीं समझना चाहिए कि भक्ति के परिणामस्वरूप किसी भक्त को सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। भक्ति का असली फल तो श्रीभगवान् के प्रति शुद्ध प्रेम जागृत होना है जो समस्त परिस्थितियों में बना रहता है।

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रखलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

यस्य—जिसका; ह वाव—निस्सन्देह; क्षुत—भूखे होने पर; पतन—गिरना; प्रखलन-आदिषु—लड़खड़ाना आदि; विवशः—असहाय होकर; सकृत्—एक बार; नाम अभिगृणन्—भगवान् के पवित्र नाम का जप करते हुए; पुरुषः—व्यक्ति; कर्म-बन्धनम्—कर्मों का बन्धन; अञ्जसा—पूर्णतया; विधुनोति—धो देते हैं; यस्य—जिसका; ह—निश्चय ही; एव—इस प्रकार; प्रतिबाधनम्—विकर्षण; मुमुक्षवः—मुक्ति के इच्छुक प्राणी; अन्यथा—अन्यथा; एव—निश्चय ही; उपलभन्ते—अनुभव करने का प्रयत्न करते हैं।

यदि भूख से व्याकुल होने, गिरने अथवा ठोकर खाने पर कोई इच्छा अथवा अनिच्छा से एक बार भी भगवान् का पवित्र नाम लेता है, तो वह सहसा अपने पूर्वकर्मों के प्रभावों से मुक्त हो जाता है। कर्मी लोग भौतिक कार्यों में फँस कर योग-साधना में अनेक कष्ट उठाते हैं और अन्य लोग भी वैसी ही स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

तात्पर्य : यह आवश्यक नहीं है कि श्रीभगवान् की भक्ति करने के पूर्व मनुष्य को अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें अर्पित की जाये और बन्धनमुक्त हो लिया जाये। भक्त को किसी प्रकार के प्रयत्न के बिना

ही स्वतः मुक्ति प्राप्त होती है। बलि महाराज को उनकी सारी सम्पत्ति इसलिए नहीं वापस मिली कि उन्होंने श्रीभगवान् को दान दिया था। जो भी समस्त भौतिक कामनाओं एवं प्रयोजनों से मुक्त होकर प्रत्येक सुअवसर को चाहे वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक भगवान् का वरदान समझता है उसकी भगवत्सेवा में कभी बाधा नहीं पहुँचती। मुक्ति तथा भुक्ति तो भक्ति के आनुषंगिक फल मात्र हैं। भक्त को मुक्ति के लिए अलग से कुछ नहीं करना होता। श्रील बिल्वमंगल ठाकुर का कथन है कि *मुक्तिः स्वयं मुकुलितांजलिः सेवतेऽस्मान्*—भगवान् के भक्त को मुक्ति के लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता, क्योंकि मुक्ति सदैव उनकी सेवा के लिए उद्यत रहती है।

इस प्रसंग में चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य ३.१७७-१८८) में भगवन्नाम जप के प्रभाव की पुष्टि हरिदास ठाकुर द्वारा वर्णित है—

केह बले,—‘नाम हैते हय पापक्षय’।

केह बले,—‘नाम हैते जीवेर मोक्ष हय’॥

कुछ लोगों का कहना है कि भगवान् का पवित्र नाम लेने से पापमय जीवन के समस्त प्रभावों से मुक्त हुआ जा सकता है और कुछ का कहना है कि भगवन्नाम जप से भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

हरिदास कहेन,—‘नामेर एइ दुइ फल नय।

नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय ॥

किन्तु हरिदास ठाकुर ने कहा है कि भगवन्नाम जप का मनोवांछित फल भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना या पापमय जीवन के फलों से मुक्त होना नहीं है। भगवन्नाम के जप का वास्तविक परिणाम सुप्त कृष्णभावनामृत को जाग्रत करना है।

आनुषंगिक फल नामेर—‘मुक्ति’, ‘पापनाश’।

ताहार दृष्टान्त यैछे सूर्येर प्रकाश ॥

हरिदास ठाकुर ने कहा है कि पाप-कर्मों के फलों से मुक्ति तथा स्वतंत्रता तो भगवन्नाम जप के आनुषंगिक फल हैं। यदि कोई शुद्धभाव से भगवन्नाम जप करता है, तो उसे श्रीभगवान् की प्रिय सेवा का पद प्राप्त होता है। इस प्रसंग में हरिदास ने नाम-शक्ति की तुलना सूर्यप्रकाश से की है।

एइ श्लोकेर अर्थ कर पंडितेर गण।”

सबे कहे,—‘तुमि कह अर्थ-विवरण’॥

उन्होंने समस्त विद्वानों के समक्ष एक श्लोक रखा, किन्तु उन सबों ने उन्हीं से उस श्लोक का भावार्थ पूछा—

हरिदास कहेन,—“यैछे सूर्येर उदय।

उदय ना हैते आरम्भे तमेर हय क्षय ॥

हरिदास ने कहा ज्योंही सूर्य उदय होने लगता है त्योंही रात्रि का अंधकार सूर्य-प्रकाश दिखने के पहले ही भागने लगता है।

चौर-प्रेत-राक्षसादिर भय हय नाश।

उदय हैले धर्म-कर्म आदि परकाश ॥

सूर्योदय के पहले ही प्रातःकालीन प्रकाश के भय से रात्रि के समय होने वाले संकल अर्थात् चोरों, भूतों तथा राक्षसों के उत्पात विनष्ट हो जाते हैं और जब वास्तव में धूप निकल आती है, तो मनुष्य अपने कार्यों में लग जाता है।

ऐछे नामोदयारम्भे पाप-आदिर क्षय।

उदय कैले कृष्णपदे हय प्रेमोदय ॥

इसी प्रकार पवित्र नाम का शुद्ध रूप में जप करने के पूर्व ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है और शुद्ध रीति से जप करने पर वह श्रीकृष्ण का प्रेमी बन जाता है।

‘मुक्ति’ तुच्छ-फल हय नामाभास हैते।

येमुक्ति भक्त ना लय, से कृष्ण चाहे दिते ॥”

यदि श्रीकृष्ण मुक्ति प्रदान करें तो भी भक्त उसे कभी स्वीकार नहीं करता। मुक्ति तो नामाभास अर्थात् पूर्ण प्रकाश दृष्टिगोचर होने के पूर्व ही पवित्र नाम के प्रकाश की झलक से प्राप्त हो सकती है।

नामाभास नाम अपराध अर्थात् अपराध करते हुए नाम जप करने तथा शुद्ध जप के मध्य की अवस्था है। भगवान् के नाम-जप की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रथम अवस्था में नाम जप करते हुए प्राणी दस प्रकार के अपराध करता है। दूसरी अवस्था नामाभास है, जिसमें अपराध लगभग बन्द हो जाते हैं

और प्राणी विशुद्ध जप की दशा की ओर अग्रसर होता है। तृतीय अवस्था में जब प्राणी अपराध मुक्त होकर हरे कृष्ण मंत्र का जप करता है, तो कृष्ण के प्रति उसका सुप्त प्रेम तत्क्षण जाग्रत हो उठता है। यही सिद्धि है।

तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव. ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; भक्तानाम्—भक्तों का; आत्म-वताम्—सनक तथा सनातन जैसे आत्मज्ञानी पुरुषों का; सर्वेषाम्—सबों का; आत्मनि—आत्मा रूप श्रीभगवान् तक; आत्म-दे—जो बिना हिचक के अपने आप को दे देता है; आत्मतया—जो परम आत्मा है, परमात्मा; एव—निस्सन्देह।

प्रत्येक प्राणी के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित श्रीभगवान् नारदमुनि जैसे भक्तों के हाथों बिक जाते हैं। दूसरे शब्दों में, परमेश्वर ऐसे ही भक्तों को प्यार करते हैं और जो उन्हें शुद्ध भाव से प्यार करते हैं। वे उनके हाथों अपने आप को सौंप देते हैं। यहाँ तक कि महान् आत्म-साक्षात्कार करने वाले योगी, यथा चारों कुमार भी अपने अन्तर में परमात्मा का साक्षात्कार करके दिव्य आनन्द प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य : श्रीभगवान् बलि महाराज के द्वारपाल इसलिए नहीं बने कि उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, वरन् इसलिए कि वे प्रेमी के रूप में उच्चपद सिद्धि प्राप्त कर चुके थे।

न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति. ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वै—निस्सन्देह; भगवान्—श्रीभगवान् ने; नूनम्—निश्चय ही; अमुष्य—बलि महाराज को; अनुजग्राह—अपना अनुग्रह दिखाया; यत्—क्योंकि; उत—निश्चय ही; पुनः—फिर; आत्म-अनुस्मृति—श्रीभगवान् के स्मरण का; मोषणम्—लूटने वाला; माया-मय—माया का एक गुण; भोग-ऐश्वर्यम्—भौतिक ऐश्वर्य; एव—निश्चय ही; आतनुत—विस्मृत; इति—इस प्रकार।

श्रीभगवान् ने बलि महाराज को भौतिक सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान करके अपना अनुग्रह प्रदर्शित नहीं किया क्योंकि इनसे ईश्वर की प्रेमाभक्ति भूल जाती है। भौतिक ऐश्वर्य का परिणाम यह होता है कि फिर भगवान् में मन नहीं लगता।

तात्पर्य : दो प्रकार के ऐश्वर्य होते हैं—एक वह जो कर्मों से जनित है और भौतिक है तथा जबकि दूसरा आध्यात्मिक है। शरणागत जीव जो श्रीभगवान् पर पूर्णतः आश्रित होता है इन्द्रियभोग के लिए भौतिक ऐश्वर्य की कामना नहीं करता। अतः यदि शुद्ध भक्त के पास विपुल ऐश्वर्य दिखे तो वह उसके

कर्म के कारण नहीं होता, वरन् उसकी भक्ति के कारण होता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि उसे यह पद इसलिए दिया जाता है, क्योंकि भगवान् चाहते हैं कि वह सरलतापूर्वक एवं वैभवपूर्ण ढंग से उनकी सेवा कर सके। नवदीक्षित भक्त पर भगवान् विशेष दयालु रहते हैं, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वह निर्धन हो जाता है। यह भगवत्कृपा ही है, अन्यथा नवदीक्षित भक्त ऐश्वर्य प्राप्त करके भगवान् की सेवा भूल सकता है। किन्तु यदि भगवान् किसी महान् भक्त को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, तो यह भौतिक ऐश्वर्य नहीं है किन्तु इसे एक आध्यात्मिक अवसर ही मानना चाहिए। देवताओं को प्रदत्त भौतिक ऐश्वर्य से भक्त भगवान् को भूल जाता है, किन्तु बलि महाराज को भगवान् के प्रति भक्ति बनाये रखने के लिए ऐश्वर्य का वरदान मिला था। जिसे माया छू तक नहीं गई थी।

यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रतिमुक्तो गिरिदर्या चापविद्ध इति होवाच. ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

यत्—जो; तत्—वह; भगवता—श्रीभगवान् द्वारा; अनधिगत-अन्य-उपायेन—जिसे अन्य साधनों से नहीं देखा जा सकता; याच्ञा-छलेन—याचना ( भिक्षा ) के बहाने; अपहत—ठगा गया; स्व-शरीर-अवशेषित—केवल अपना शरीर शेष रह जाने पर; लोक-त्रयः—तीनों लोक; वरुण-पाशैः—वरुण के पाश द्वारा; च—तथा; सम्प्रतिमुक्तः—पूर्णतया बँधा हुआ; गिरि-दर्याम्—पर्वत की गुफा में; च—तथा; अपविद्धः—रोका जाकर; इति—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; उवाच—कहा।

जब श्रीभगवान् को बलि महाराज का सर्वस्व ले लेने की कोई युक्ति न सूझी तो उन्होंने भिक्षा माँगने के बहाने तीनों लोक माँग लिए। इस प्रकार उनका शरीरमात्र शेष बच रहा, किन्तु तो भी भगवान् सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने बलि महाराज को वरुण पाश से बन्दी बना लिया और एक पर्वत की गुफा में ले जाकर फेंक दिया। यद्यपि बलि महाराज का सर्वस्व ले लिया गया था और उन्हें बन्दी बना कर गुफा में डाल दिया गया था, तो भी महान् भक्त होने के कारण वे इस प्रकार बोले।

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम्. ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; बत—धिक; अयम्—यह; भगवान्—अत्यन्त विद्वान्; अर्थेषु—आत्महित के लिए; न—नहीं; निष्णातः—परम अनुभवी; यः—जो; असौ—स्वर्ग का राजा; इन्द्रः—इन्द्र; यस्य—जिसका; सचिवः—प्रधान मंत्री; मन्त्राय—मंत्रणा के

लिए, सलाह के लिए; वृतः—चुना हुआ; एकान्ततः—अकेला; बृहस्पतिः—बृहस्पति; तम्—उसको; अतिहाय—उपेक्षा करके; स्वयम्—स्वयं; उपेन्द्रेण—उपेन्द्र ( भगवान् वामनदेव ) की सहायता से; आत्मानम्—मुझसे; अयाचत—प्रार्थना की; आत्मनः—स्वयं; च—तथा; आशिषः—आशीर्वाद ( तीनों लोक ); नो—नहीं; एव—ही; तत्-दास्यम्—भगवान् की सप्रेम सेवा; अति—अत्यधिक; गम्भीर-वयसः—अपार अवधि वाला; कालस्य—काल का; मन्वन्तर-परिवृत्तम्—मनु के जीवन के अन्त होने पर परिवर्तित; कियत्—क्या लाभ; लोक-त्रयम्—तीनों लोक; इदम्—इन।

धिक्! स्वर्ग का राजा इन्द्र कितना दयनीय है कि अत्यन्त विद्वान और शक्तिमान होकर तथा बृहस्पति को परामर्श हेतु अपना प्रधान बना लेने पर भी आध्यात्मिक उन्नति के विषय में सर्वथा अज्ञानी है। बृहस्पति भी बुद्धिमान नहीं है, क्योंकि उसने अपने शिष्य इन्द्र को उचित शिक्षा नहीं दी। भगवान् वामनदेव इन्द्र के द्वार पर खड़े हुए थे, किन्तु उनसे इन्द्र ने दिव्य सेवा के लिए अवसर का वरदान न माँग कर उन्हें मेरे द्वार पर अपने इन्द्रिय-भोग के लिए तीन लोकों की प्राप्ति के लिए भिक्षा हेतु भेज दिया। तीनों लोकों की प्रभुता अत्यन्त महत्त्वहीन है, क्योंकि मनुष्य के पास चाहे कितना भी ऐश्वर्य क्यों न रहे वह एक मन्वन्तर तक ही चलता है, जो अनन्त काल का एक क्षुद्रांश मात्र है।

तात्पर्य : बलि महाराज इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने इन्द्र से युद्ध करके तीनों लोकों पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। इन्द्र निश्चय ही अत्यन्त बुद्धिमान था, फिर भी उसने भगवान् वामनदेव से उनकी भक्ति में संलग्न होने की बात न कह कर अपने लिए ऐसे धन-धान्य की याचना की जो एक मन्वन्तर में समाप्त हो जाता है। मनु की आयु बहत्तर युग आँकी गई है। एक युग में ४३,००,००० वर्ष होते हैं, अतः मनु का जीवनकाल ३०,९६,००,००० वर्ष हुआ। देवताओं का भौतिक ऐश्वर्य एक मन्वन्तर तक ही रहता है। काल दुस्तर है! नियत काल, भले ही लाखों वर्ष क्यों न हो, तुरन्त बीत जाता है। देवताओं का ऐश्वर्य काल की सीमाओं के भीतर ही रहता है। अतः बलि महाराज को यह पछतावा रहा कि अत्यन्त विद्वान होते हुए भी इन्द्र अपनी बुद्धि का समुचित उपयोग नहीं कर पाया, क्योंकि वामनदेव से भगवान् की भक्ति न माँग कर इन्द्र ने उनका उपयोग भौतिक सम्पत्ति माँगने के लिए किया। यद्यपि इन्द्र बुद्धिमान था और उसका प्रधान मंत्री बृहस्पति भी बुद्धिमान था, किन्तु इनमें से किसी ने भी भगवान् वामनदेव की प्रेमा-भक्ति करने का वर नहीं माँगा। अतः बलि महाराज को इन्द्र पर पछतावा हुआ।

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि. ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

यस्य—जिसका ( श्रीभगवान् का ); अनुदास्यम्—सेवा; एव—निश्चय ही; अस्मत्—हमारा; पिता-महः—पितामह, बाबा; किल—निस्सन्देह; वव्रे—स्वीकृत; न—नहीं; तु—लेकिन; स्व—अपना; पित्र्यम्—पैतृकसम्पत्ति; यत्—जो; उत—निश्चय ही; अकुतः-भयम्—निर्भीकता; पदम्—पद, स्थान; दीयमानम्—प्रदान किये जाने पर; भगवतः—भगवान् की अपेक्षा; परम्—अन्य; इति—इस प्रकार; भगवता—श्रीभगवान् द्वारा; उपरते—बध किये जाने पर; खलु—निस्संदेह; स्व-पितरि—अपना पिता ।

बलि महाराज ने कहा—मेरे पितामह प्रह्लाद महाराज ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने आत्महित पहचाना। उनके पिता हिरण्यकशिपु की मृत्यु के पश्चात् भगवान् नृसिंहदेव ने प्रह्लाद को उनके पिता का साम्राज्य प्रदान करने के साथ ही भौतिक बन्धनों से मुक्ति प्रदान करनी चाही, किन्तु प्रह्लाद ने इनमें से किसी को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सोचा कि मुक्ति तथा भौतिक ऐश्वर्य भक्ति में बाधक हैं, अतः श्रीभगवान् से ऐसे वरदान प्राप्त कर लेना भगवान् का वास्तविक अनुग्रह नहीं है। फलस्वरूप कर्म तथा ज्ञान के फलों को न स्वीकार करते हुए प्रह्लाद महाराज ने भगवान् से केवल उनके दास की भक्ति में अनुरक्त रहने का वर माँगा।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है कि शुद्ध भक्त अपने को परमेश्वर के दास का भी दास माने ( गोपीभर्तुः पादकमलयोर् दासदासानुदासः )। वैष्णव दर्शन में किसी को प्रत्यक्ष दास नहीं बनना चाहिए। प्रह्लाद महाराज को इस संसार में ऐश्वर्यपूर्ण पद तथा ब्रह्म में तदाकार होने की स्वच्छन्दता जैसे आशीर्वाद प्राप्त थे, किन्तु उन्होंने इन्हें अस्वीकार कर दिया। उन्होंने भगवान् के दासों के भी दास की सेवा में रत रहना श्रेयस्कर समझा। इसलिए बलि महाराज ने कहा है कि चूँकि उनके पितामह प्रह्लाद महाराज ने भौतिक ऐश्वर्य तथा बन्धन से मुक्ति जैसे श्रीभगवान् के आशीर्वादों को नकार दिया था, इसलिए वे आत्महित को भलीभाँति समझते थे।

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति. ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—प्रह्लाद महाराज का; महा-अनुभावस्य—जो सिद्ध भक्त थे; अनुपथम्—पथ; अमृजित-कषायः—भौतिकता से दूषित पुरुष; कः—क्या; वा—अथवा; अस्मत्-विधः—हमारे तुल्य; परिहीण-भगवत्-अनुग्रहः—श्रीभगवान् के अनुग्रह बिना; उपजिगमिषति—अनुसरण करना चाहता है; इति—इस प्रकार।

बलि महाराज ने कहा—हमारे जैसे पुरुष, जो अब भी भौतिक सुखों में लिप्त हैं, जो भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से दूषित हैं और जिन पर श्रीभगवान् के अनुग्रह का अभाव है, वे

भला ईश्वर के सिद्ध भक्त प्रह्लाद महाराज के सर्वोत्कृष्ट मार्ग का अनुसरण कैसे कर सकते हैं ?

तात्पर्य : कहा जाता है कि आत्म-साक्षात्कार के लिए मनुष्य को भगवान् ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, शिवजी तथा प्रह्लाद महाराज जैसे महापुरुषों का अनुसरण करना चाहिए। यदि पूर्ववर्ती आचार्यों तथा विद्वानों के पदचिह्नों पर चला जाये तो भक्ति का मार्ग बिल्कुल ही कठिन नहीं है, किन्तु जो प्रकृति के गुणों के द्वारा भौतिक दृष्टि से कलुषित हो चुके हैं उनके लिए उस मार्ग पर चल पाना कठिन है। यद्यपि बलि महाराज अपने पितामह के पदचिह्नों का अनुसरण कर रहे थे, किन्तु अपनी विनयशीलतावश सोच रहे थे कि वे ऐसा नहीं कर रहे हैं। भक्ति के नियमों का पालन करने वाले सिद्ध भक्तों की यह विशेषता है कि अपने को सामान्य व्यक्ति समझते हैं। यह विनयशीलता का कृत्रिम दिखावा नहीं है; एक वैष्णव वास्तव में इसी प्रकार सोचता है, और अपने को परम पद पर कभी नहीं मानता।

तस्यानुचरितमुपरिष्ठाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते  
निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—बलि महाराज का; अनुचरितम्—चरित्र, वर्णन; उपरिष्ठात्—बाद के, परवर्ती ( आठवें स्कंध में ); विस्तरिष्यते—विस्तार से वर्णन किया जायेगा; यस्य—जिसका; भगवान्—श्रीभगवान्; स्वयम्—स्वयं; अखिल-जगत्-गुरुः—तीनों लोकों के गुरु; नारायणः—साक्षात् नारायण; द्वारि—द्वार पर; गदा-पाणिः—हाथ में गदा लिये हुए; अवतिष्ठते—खड़े रहते हैं; निज-जन-अनुकम्पित-हृदयः—जिनका हृदय अपने भक्तों के लिए सदैव दया से पूरित रहता है; येन—जिसके द्वारा; अङ्गुष्ठेन—बड़े अँगूठे से; पदा—अपने पाँव का; दश-कन्धरः—दश सिरों वाला, रावण; योजन-अयुत-अयुतम्—अस्सी हजार मील की दूरी; दिक्-विजये—बलि महाराज पर विजय प्राप्त करने हेतु; उच्चाटितः—फेंक दिया।

शुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्, भला मैं बलि महाराज के चरित्र का कैसे गुणगान कर सकता हूँ? तीनों लोकों के स्वामी श्रीभगवान्, जो अपने भक्त पर अत्यन्त दयालु हैं, महाराज बलि के द्वार पर गदा धारण किये खड़े रहते हैं। जब पराक्रमी असुर रावण बलि महाराज पर विजय पाने के लिए आया तो वामनदेव ने उसे अपने पैर के अँगूठे से अस्सी हजार मील दूरी पर फेंक दिया। मैं बलि महाराज के चरित्र तथा कार्यकलापों का विस्तृत वर्णन आगे ( आठवें स्कंध में ) करूँगा।

ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा  
निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो  
महीयते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

ततः—सुतल नामक लोक के; अधस्तात्—नीचे; तलातले—तलातल नामक लोक में; मयः—मय; नाम—नाम का; दानव-इन्द्रः—दानव, दानवों का राजा; त्रि-पुर-अधिपतिः—तीनों पुरियों का ईश्वर; भगवता—सर्वशक्तिमान द्वारा; पुरारिणा—भगवान् शिव द्वारा, जिन्हें त्रिपुरारी कहा जाता है; त्रि-लोकी—तीनों लोकों का; शम्—सौभाग्य; चिकीर्षुणा—कामना करने वाला; निर्दग्ध—जला दिया; स्व-पुर-त्रयः—जिसकी तीनों पुरियाँ; तत्-प्रसादात्—भगवान् शिव के अनुग्रह से; लब्ध—प्राप्त किया गया; पदः—राज्य; माया-विनाम् आचार्यः—समस्त मायावियों के स्वामी; महा-देवेन—भगवान् शिव के द्वारा; परिरक्षितः—सुरक्षित; विगत-सुदर्शन-भयः—जो श्रीभगवान् तथा उनके सुदर्शन चक्र से भयभीत नहीं है; महीयते—आराधित है।

सुतल लोक के नीचे तलातल नामक एक और लोक है जो मय दानव द्वारा शासित है। मय इन्द्रजाल की शक्तियों से पूर्ण, समस्त मायावियों के आचार्य ( स्वामी ) रूप में विख्यात है। एक बार भगवान् शिव ने, जिन्हें त्रिपुरारी कहा जाता है, तीनों लोकों के लाभ के लिए मय के तीनों राज्यों को जला दिया, किन्तु बाद में उससे प्रसन्न होकर उसका राज्य लौटा दिया। तब से शिवजी मय दानव की रक्षा करते हैं, इसलिए वह गलती से सोचता है कि उसे श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र का भय नहीं करना चाहिए।

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः

कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तलातल लोक से; अधस्तात्—नीचे; महातले—महातल नामक लोक में; काद्रवेयाणाम्—कद्रू की सन्तानों का; सर्पाणाम्—जो सर्प है; न एक-शिरसाम्—जो अनेक फनों वाले हैं; क्रोध-वशः—सदैव क्रोध के वशीभूत; नाम—नामक; गणः—गण, समूह; कुहक—कुहक; तक्षक—तक्षक; कालिय—कालिय; सुषेण—सुषेण; आदि—इत्यादि; प्रधानाः—प्रमुख; महा-भोगवन्तः—समस्त प्रकार के भोगों में लिप्त; पतत्रि-राज-अधिपतेः—समस्त पक्षियों के अधिपति, गरुड़ से; पुरुष-वाहात्—श्रीभगवान् को ले जाने वाला; अनवरतम्—निरन्तर; उद्विजमानाः—भयभीत; स्व—अपने आप; कलत्र-अपत्य—स्त्रियों तथा सन्तानों; सुहृत्—मित्र; कुटुम्ब—कुटुम्बीजन; सङ्गेन—साथ में; क्वचित्—कभी-कभी; प्रमत्ताः—क्रुद्ध; विहरन्ति—विहार करते हैं, खेलते हैं।

तलातल के नीचे का लोक महातल कहलाता है। यह सदैव क्रुद्ध रहने वाले अनेक फनों वाले कद्रू की सर्प-सन्तानों का आवास है। इन सर्पों में कुहक, तक्षक, कालिय तथा सुषेण प्रमुख हैं। महातल के सारे सर्प भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ के भय से सदैव आतंकित रहते हैं, किन्तु चिन्तातुर होते हुए भी उनमें से कुछ अपनी पत्नियों, सन्तानों, मित्रों तथा कुटुम्बियों के साथ-साथ क्रीड़ाएँ करते रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ यह बताया गया है कि महातल लोक के सर्प अत्यन्त शक्तिशाली तथा अनेक फनों वाले होते हैं। वे अपनी स्त्रियों तथा पुत्रों के साथ रहते हुए अपने को परम सुखी मानते हैं, यद्यपि उन्हें

गरुड़ का भय बना रहता है जो उनको नष्ट करने के लिए वहाँ आता है। यही भौतिक जीवन का विधान है। भले ही कोई कितनी कठिन परिस्थिति में क्यों न रहे, तो भी वह अपनी पत्नी, पुत्र, मित्र तथा कुटुम्बीजनों के मध्य अपने को सुखी मानता है।

ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्विभ्यति ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः अधस्तात्—महातल के भी नीचे; रसातले—रसातल में; दैतेयाः—दिति के पुत्र; दानवाः—दनु के पुत्र; पणयः नाम—पणि नामक; निवात-कवचाः—निवात कवच; कालेयाः—कालेय; हिरण्य-पुरवासिनः—हिरण्य-पुरवासी; इति—इस प्रकार; विबुध-प्रत्यनीकाः—देवताओं के शत्रु; उत्पत्त्याः—जन्म के; महा-ओजसः—अत्यन्त ओजस्वी; महा-साहसिनः—अत्यन्त क्रूर; भगवतः—भगवान् का; सकल-लोक-अनुभावस्य—जो समस्त लोकों के लिए मंगलकारी है; हरेः—श्रीभगवान् का; एव—निश्चय ही; तेजसा—सुदर्शन चक्र से; प्रतिहत—पराजित; बल—शक्ति; अवलेपाः—तथा गर्व ( शारीरिक बल के कारण ); बिल-ईशयाः—सर्प; इव—सदृश; वसन्ति—रहते हैं; ये—जो; वै—निस्सन्देह; सरमया—सरमा द्वारा; इन्द्र-दूत्या—इन्द्र की दूती; वाग्भिः—शब्दों से; मन्त्र-वर्णाभिः—मंत्रों के रूप में; इन्द्रात्—राजा इन्द्र से; विभ्यति—डरते हैं।

महातल के नीचे रसातल नामक लोक है जो दिति तथा दनु के आसुरी पुत्रों का निवास है।

ये पणि, निवात-कवच, कालेय तथा हिरण्य-पुरवासी कहलाते हैं। ये देवताओं के शत्रु हैं और सर्पों की भाँति बिलों में रहते हैं। ये जन्म से ही अत्यन्त शक्तिशाली एवं क्रूर हैं और अपनी शक्ति का गर्व होने पर भी वे समस्त लोकों के अधिपति श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र द्वारा सदैव पराजित होते हैं। जब इन्द्र की नारी रूप दूत सरमा विशेष एक विशिष्ट शाप देती है, तो महातल के असुर सर्प इन्द्र से अत्यन्त भयभीत हो उठते हैं।

तात्पर्य : कहा जाता है कि इन सर्पासुरों एवं इन्द्र के बीच घमासान युद्ध हुआ। सरमा नाम की इन्द्र की दूत से जब इन पराजित असुरों की भेंट हुई तो वह एक मंत्र का जप कर रही थी, अतः वे इससे डर गये; इसलिए तब से वे रसातल नामक लोक में निवास कर रहे हैं।

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्चेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णावः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ततः अधस्तात्—रसातल के नीचे; पाताले—पाताल लोक में; नाग-लोक-पतयः—नागलोकों के स्वामी; वासुकि—वासुकि; प्रमुखाः—प्रमुख; शङ्ख—शंख; कुलिक—कुलिक; महा-शङ्ख—महाशंख; श्वेत—श्वेत; धनञ्जय—धनञ्जय; धृतराष्ट्र—धृतराष्ट्र; शङ्ख-चूड—शंखचूड़; कम्बल—कम्बल; अश्वतर—अश्वतर; देव-दत्त—देवदत्त; आदयः—इत्यादि; महा-भोगिनः—अत्यन्त भोगी; महा-अमर्षाः—प्रकृति से अत्यन्त ईर्षालु; निवसन्ति—रहते हैं; येषाम्—जिनका; उ ह—निश्चय ही; वै—निस्सन्देह; पञ्च—पाँच; सप्त—सात; दश—दस; शत—एक सौ; सहस्र—एक हजार; शीर्षाणाम्—फणों वालों का; फणासु—उन फणों पर; विरचिताः—जड़ित; महा-मणयः—अत्यन्त मूल्यवान मणि; रोचिष्णवः—तेज से पूर्ण; पाताल-विवर—पाताल लोक की गुफाएँ; तिमिर-निकरम्—अंधकार-राशि; स्व-रोचिषा—उनके फणों के तेज से; विधमन्ति—भागते हैं।

रसातल के नीचे पाताल अथवा नागलोक नामक एक अन्य लोक है जहाँ अनेक आसुरी सर्प तथा नागलोक के स्वामी रहते हैं, यथा शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर तथा देवदत्त। इसमें से वासुकि प्रमुख है। वे अत्यन्त क्रुद्ध रहते हैं और उनमें से कुछ के पाँच, कुछ के सात, कुछ के दस, कुछ के सौ और अन्यो के हजार फण होते हैं। इन फणों में बहुमूल्य मणियां सुशोभित हैं और इन मणियों से निकला प्रकाश बिल-स्वर्ग के सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “नीचे के स्वर्गीय लोकों का वर्णन” नामक चौबीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।